महात्मा गाँधी, जयप्रकाश नारायण एवं राममनोहर लोहिया के सामाजिक न्याय संबंधी विचारों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन

कुमोदनी कुमारी, डॉ0 किरण झा
शोध–छात्राा
विश्वविद्यालय दर्शनशास्त्रा विभाग
बी0आर0ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्रपफरपुर
असिस्टेंट प्रोपफेसर
दर्शनशास्त्रा विभाग
एम0डी0डी0एम0 कॉलेज, मुजफ्रपफरपुर

भारतीय दर्शन के आधुनिक काल को अनेक प्रकार की सामाजिक न्याय का नाम दे सकते हैं। ध्यातव्य है कि इनके सामाजिक न्याय की अवधरणा में महज सै(ान्तिक प्रचुरता और प्रचार नहीं बल्कि एक व्यावहारिक, प्रयोगात्मक प्रतिब(ता है। समकालीन भारतीय चिन्तकों में सामाजिक चेतना का विस्तार राष्ट्रीयता के बाद जिस दूसरे महत्वपूर्ण मुद्दे पर केन्द्रित है वह है इनकी सामाजिक न्याय की अवधरणा। वर्णभेद, लिंगभेद, जातिप्रथा, छुआछूत आदि के कारण उपजे सामाजिक नैतिक असंतुलन की दार्शनिक प्रतिक्रिया का नाम है सामाजिक न्याय।

सामाजिक न्याय का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना आत्मसम्मान है और उसकी कद्र होनी चाहिए। प्राचीन काल में प्राच्य तथा पाश्चात्य दर्शनों में ध्र्म का बोलबाला था। धर्मिक ग्रन्थों और प्रथाओं में भी सामाजिक न्याय ;वर्णाश्रम, कैथोलिक, पोटेस्टेण्ट आदिद्ध की अवधरणा थी परन्तु आधुनिक काल में सामाजिक न्याय एक वैचारिक आर्थिक सामाजिक क्रांति के रूप में उभरा। समाजवादी, साम्यवादी और मार्क्सवादी लेनिनवादी आन्दोलनों ने सामाजिक न्याय को और उग्र बना दिया। आर्थिक समानता, प्रगतिशील उदारवादी व्यवस्था आदि के रूप में सामाजिक न्याय दर्शन और साहित्य का विषयवस्तु बना रहा है।

सामाजिक न्याय एक ओर जहाँ व्यक्तिगत सद्गुण है वहीं दूसरी तरपफ यह सामाजिक व्यवस्था से जुड़ा है। समाज वही है जहाँ व्यक्ति और उसकी संस्थाएँ उपयुक्त रीति से जुड़े हैं। कैथोलिक सम्प्रदाय के कुछ विचारकों ने यह माना कि सामाजिक न्याय दिलाना राज्य और सत्ता का दायित्व है न कि चर्च का। चर्च या धर्मिक स्तर से जो भी सामाजिक असमानता चली आ रही है उसे भी दूर करना चाहिए। धर्मिक परम्पराओं, वर्गों, जातियों आदि ने जो सामाजिक भेद खड़े किये हैं, आदमी को आदमी से बाँटा है वह भी समाप्त करना सामाजिक न्याय का एक हिस्सा है। इस्लाम धर्म में भी सामाजिक न्याय पर जोर दिया गया है। इसके अनुसार व्यक्ति की समझदारी को पूर्ण स्वतंत्राता हासिल है तथा सभी उस अल्लाह के ही बन्दे हैं और आपस में समान हैं। सभी को समान हैसियत और हक हासिल है, कोई बड़ा या छोटा नहीं है।

विभिन्न युगों एवं विभिन्न कालों के घटनाक्रमों का सिंहावलोकन करने पर भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में शोषण के संकेत संभवतः हमें किसी न किसी रूप में दृष्टिगत होते हैं। त्रोतायुग में राक्षसों एवं दुष्टों के द्वारा)षि–मुनियों को त्रास्त एवं तंग करने के उदाहरण हमें मिलते हैं। पफलतः रामावतार होता है एवं समस्त राक्षसों का विनाश होता है। धर्म की विजय होती है। न्याय का साम्राज्य स्थापित होता है। द्वापर युग में भी कृष्णावता की कथा स्पष्ट है जहाँ लीला पुरूषोत्तम श्री कृष्ण विभिन्न अवसरों पर अनेकों अत्याचारियों, अन्याय के पक्षध्रों को नेस्तनाबूत कर धर्म की स्थापना करते हैं, अन्याय एवं अनीति का अंत कर नीति एवं न्याय को प्रतिष्ठित करते हैं।

आधुनिक युग में भारत में अंगेजों के आक्रमण के साथ ही उनका काले–गोरे का भेदभाव कुख्यात था। काले लोगों अर्थात् भारतीय नागरिकों को उनलोगों ने बहुत सारी सुविधओं से वंचित कर रखा था और वे अपने ही देश में गुलाम का जीवन जी रहे थे। उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक माना जाता था। इस अन्याय एवं भेद–भाव के विरू(बहुत सारे आन्दोलन हुए, लड़ाईयाँ लड़ी गई और परिणामतः 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्रा हुआ। समाज में समानता, न्याय का उदय होता है और

अंग्रेजी हुकूमत का अस्त। बालगंगाध्र तिलक, महात्मा गाँधी आदि अनेक नेताओं ने भारत माता की आजादी की लड़ाई में प्रशंसनीय भूमिका निभाई। यह तो एक राजनीतिक संघर्ष था जिसकी परिणति सर्वविदित है। दूसरी तरपफ भारतीय समाज कई प्रकार की सामाजिक बुराईयों एवं संकीर्णताओं से ग्रस्त था। यथा – सती प्रथा, छुआछूत, अगड़े–पिछड़े के बीच भेदभाव एवं वैमनस्य का भाव। दलित, अकलियत एवं कमजोर वर्गों के प्रति दुर्व्यवहार, दुर्भावना, द्वेष, घृणा, तिरस्कार एवं सौतेलेपन का व्यवहार अपनी पराकाष्ठा पर था।

राजाराम मोहन जैसे समाजसेवी एवं राष्ट्रभक्त ने सती–प्रथा के विरू(शंखनाद किया और सनकी अंग्रेज शासक को मजबूर होकर इसे गैर–कानूनी करार देना पड़ा। नये नियमों के प्रभावी होने के कारण यह कुकृत्य बहुत कुछ कम हुआ। वैसे तो एक दो घटनाएँ यदा–कदा घटती रहती है जो संकुचित, संकीर्ण एवं अमानवीय दृष्टिकोण का परिचायक है। ऐसी घटनाओं को महिमामंडित करने वालों को शर्म आनी चाहिए। यह सभ्य समाज पर आज भी ऐसा कलंक है, जिसकी जितनी भी निंदा की जाए कम है। स्त्रियों के प्रति समाज में अन्याय, शोषण, उत्पीड़न के उदाहरण में कमी अवश्य आई है। इसका प्रधन कारण उसका शिक्षित होना एवं अत्यध्कि जागरूक होना है। समाज का दृष्टिकोण भी कुछ सकारात्मक हुआ है और बहुत हद तक वे न्याय की अध्किारिणी बन पाई हैं। वैसे आज भी नारी सशक्तिकरण की दिशा में बहुत कुछ किया जाना बाकी है। तभी वे पूर्ण सामाजिक न्याय को प्राप्त कर सकेगी। आज भी मादा भ्रूण–हत्या जैसी गर्हित एवं अतिनिन्दित बुराईयाँ जारी है। शिक्षा के सम्यक प्रचार–प्रसार, कानूनी कमान के कसने के कारण एवं सामाजिक सोंच में परिवर्तन के कारण इन घटनाओं में "ास हुआ है। लिंग भेद भी सामाजिक न्याय का एक महत्वपूर्ण बिन्दु है जिसके कारण कन्या संतति के प्रति भेदभाव देखा जाता है। लेकिन इस दिशा में कुछ भावात्मक परिवर्तन परिलक्षित हुआ है और अब एकमात्रा संतति अगर वह कन्या भी है तो उससे संतोष कर लेते हैं, जबकि कुछ वर्षों पूर्व तक लोग पुत्रा प्राप्ति हेतु अनेक विवाह कर लिया करते थे। कई ऐसे उदाहरण उपलब्ध है जहाँ पुत्रा प्राप्ति की प्रत्याशा में दम्पति ने दो तीन शादियाँ ढलती वय में की ओर

पुत्रोत्पत्ति तो दूर कोई उत्पत्ति नहीं हुई और तीन चार लोगों का जीवन अपार कष्ट, कुंठा एवं असहनीय पीड़ा का प्रत्यक्ष उदाहरण बन गया।

समाज के कमजोर वर्गों के बीच सामाजिक भेदभाव, अन्याय, दुराचार की स्थिति इतनी विकट हुई कि अम्बेदकर जैसे लोग को हिन्दू धर्म का त्याग कर बौ(धर्म को स्वीकार करना पड़ा। समाज के निचले, पिछड़े तबके की आवाज बुलंद करते हुए लोहिया एवं अम्बेदकर ने इन वर्गों के लिए आरक्षण की माँग की। मंडल कमीशन को यह कार्य सौंपा गया और परिणामतः तत्काल बी0पी0 सिंह की सरकार ने आरक्षण प्रावधन को विभिन्न स्तरों पर लागू कर सामाजिक न्याय के मार्ग को प्रशस्त किया। इसके विरोध में कुछ उच्चवर्गीय युवाओं ने अपने भविष्य को अंध्कार एवं अन्यायपूर्ण मानकर आत्म हत्या तक कर ली। उच्च वर्ग में जो निर्ध्न, गरीब, लाचार एवं साध्न विहीन थे वे भी इस कानूनी शिकंजे के शिकार हुए। पिफर किसी तरह धीरे–धीरे यह बुखार उतरा ओर लोग संतोष एवं सांत्वना का संबल लेकर जीवन पथ पर इसको नियति का अभिशाप मानकर संघर्ष करने लगे। दूसरी तरपफ सामाजिक न्याय के समर्थकों ने भारी बहुमत से सत्ता प्राप्त की। समाज के सभी शोषित उपेक्षित वर्गों को न्याय, समानता, समता, समाजवाद एवं शोषण मुक्ति के ठेकेदारों ने अकूत ध्न हासिल किया। वंशवाद, परिवादवाद, भाई भतीजावाद, जातिवाद, प्रांतवाद के समर्थकों ने सरकारी सत्ता का मनमाने ढंग से दुरूपयोग किया। विभिन्न घोटालों की आड़ में खजाना लूट लिया और अपने सगे संबंध्यिों के साथ अपार ध्न राशि अपने निजी कोष में जमा किए। खाकपति खरबपति बन गया। सामाजिक न्याय के पुरोधओं ने पिछड़े वर्ग के लोगों को सदा सर्वदा के लिए पिछड़ा बना दिया। इनके वाजिब हक से वंचित कर शासन सत्ता का दुरूपयोग कर उनका जीवन दूभर कर दिया। कभी सम्प्रदायवाद का सब्जबाग दिखाकर जनता को ठगा जाता है, कभी अकलियतों एवं कमजोर वर्गों के प्रति घड़ियाली आँसू बहाये जाते हैं, पर अंततः वही ढाक के तीन पात।

समकालीन भारतीय चिन्तन के विविध रूपों में जिस सामाजिक आदर्श को केन्द्र बिन्दु बनाया गया है वह है सामाजिक न्याय की

अवधरणा। महात्मा गाँधी, जयप्रकाश नारायण एवं राममनोहर लोहिया ऐसे सामाजिक और राजनीतिक दार्शनिकों की श्रेणी में आते हैं जिनके सि(ांत और व्यवहार में कापफी साम्य देखने को मिलता है। इन तीनों को सामाजिक न्याय की प्रतिमूर्ति के रूप में देखा जा सकता है जिन्होंने अपने दार्शनिक विचारों में सामाजिक न्याय की अवधरणा पर विशेष बल दिया है।

भारत में समाजवादी विचारधरा की महत्वपूर्ण मान्यता यह रही कि समाजवादी चेतना तो सार्वजनिक है परन्तु समाजवादी प(ति देशकाल सापेक्ष और विविध रंगों में पनपते मिटती रही है। इसमें बहुजन सुखाय लोकतांत्रिक जीवन प(ति एवं ध्र्मनिरपेक्ष समाज इसका आदर्श बन गया। इस धरा के प्रबल समर्थक आचार्य नरेन्द्रदेव और उनकी पुस्तक राष्ट्रीयता और समाजवाद अध्कि प्रसि(है। इनमें जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अशोक मेहता, अच्युत पटवर्ध्न, आचार्य कृपलानी आदि अध्कि महत्वपूर्ण है। इसी से प्रभावित होकर अचानक नेहरू ने समाजवादी लोकतन्त्रा की स्थापना कर दी।

सामाजिक न्याय काल और देश की सीमाओं को तोड़कर, मानव में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण प्राणी मात्रा में समग्र और एकत्रा बु(ि जागृत कर, पर्यावरणीय नैतिक दर्शन की स्थापना ‘सर्वभूतहितेरता’ की भारतीय संकल्पना के रूप में करता है। सामाजिक न्याय के लिए नैतिकता का होना भी आवश्यक है और नैतिकता के लिए सांसारिक जीवन नितांत आवश्यक है जिसमें इस जीवन के प्रति अनुराग, श्र(ा और उदारता का भाव विद्यमान हो। भारतीय नीतिशासत्रा में ‘अस्पृहा’ ;सांसारिक उपभोग के प्रति विरक्तिद्ध को एक आवश्यक सद्गुण के रूप में चित्रित किया गया क्योंकि यही हमें जीवन के चरम पुरुषार्थ मोक्ष तक पहुँचाता है। सांसारिकता को बंध्न मानने और विरक्ति को आदर्श मानने का अर्थ निषेधत्मक नहीं ध्नात्मक है। परन्तु भारतीय जीवन–दर्शन पर इसके निषेधत्मक प्रभाव भी पड़े हैं जिनके विरू(समकालीन भारतीय चिन्तकों ने लगातार उल्लेखनीय प्रयास किये हैं।

भारतीय चिन्तन में वैदिक काल से यद्यपि विश्व के मूल तत्व के साथ–साथ सम्पूर्ण मानवीय और सामाजिक कल्याण को केन्द्रविन्दु बनाया गया था। मनु, याज्ञवल्क्य, कौटिल्य, वात्सायन आदि ने भी सामाजिक और राजनीतिक दर्शन का सूत्रापात किया था। परन्तु राजनीतिक पराधीनता और सामाजिक पिछड़ेपन के कारण आधुनिक भारतीय चिंतकों ने सामाजिक संरचना और राजनीतिक स्वतंत्राता पर अत्यध्कि बल देते हुए सामाजिक न्याय का नारा बुलन्द किया है। समाज दर्शन के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी में कौन्तेय से प्रारम्भ हुई परम्परा भारतीय चिंतन में भी विवेकानन्द, राजाराम मोहन राय, एम.एन. राय, महात्मा गाँधी, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया आदि के समाज दर्शन में परिलक्षित होते हैं जिसमें सामाजिक न्याय की निर्णायक भूमिका है।

दर्शन के इतिहास में पाश्चात्य दर्शन के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि सुकरात के पहले दार्शनिकों, विचारकों और)षि–मुनियों का ध्यान विश्व के मूल तत्व की खोज में लगा था। मध्य काल में सुपिफयों ने सर्वप्रथम उनका ध्यान मानव समस्याओं की ओर खिंचा जिसके कारण प्लेटो, अरस्तु आदि दार्शनिकों ने विश्व के मूल तत्व से पृथक मनुष्य और उसकी सामाजिक स्थिति पर ध्यान केन्द्रित किया इसलिए आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में लोकनीति, राजनीति एवं ज्ञानशास्त्रा आदि विषयों पर कापफी चर्चायें हुई। आधुनिक काल में पाश्चात्य जगत में दर्शन का केन्द्र मनुष्य और उसकी सामाजिक स्थिति को माना जिसमें लॉक, हाब्स और रूसो आदि प्रमुख विचारक हुए। इस सबका उद्देश्य दर्शन के क्षेत्रा में स्पष्ट समाज दर्शन एवं राजनीति दर्शन की स्थापना करना है इसलिए समकालीन भारतीय चिन्तन सामाजिक न्याय को केन्द्र बिन्दु बनाता है।

स्वतंत्रा भारत ;1955द्ध में भारतीय समाजवादी दल के पहले अध्यक्ष राममनोहर लोहिया का सामाजिक न्याय जिस नैतिक राजनीतिक चिन्तन की तरपफ इशारा करता है वह परम्परागत मार्क्सवादियों के मुकाबले अध्कि चेतनशील है। वे कहते हैं कि वर्ग और जाति के बीच घड़ी के दोलक जैसी क्रिया होती रहती है जो इतिहास को गति प्रदान करती है। उनके अनुसार जातियाँ, गतिहीनता, निष्क्रियता तथा रूढ़िगत अध्किारों

की पुरातनवादी शक्तियों का प्रतिनिध्त्वि करती है जबकि 'वर्ग' सामाजिक गतिशीलता की प्रचण्ड शक्तियों का प्रतिनिध्त्वि करते हैं। इनके चिथड़ों में लिपटा एशियाई समाज का आधुनिक दर्शन प्रतिपादित करते हुए लोहिया ने एक मौलिक सामाजिक दर्शन की आवश्यकता पर बल दिया है जो विशु(सामाजिक न्याय का दर्शन है।

डॉ0 अम्बेदकर चाहते थे कि जनगणना सूची, मतदाता सूची आदि में अछूतों को हिन्दुओं से अलग एक निम्न वर्ग में सूचीब(किया जाए। यह अम्बेदकर के सामाजिक न्याय का स्वरूप था जबकि गाँधी सामाजिक नैतिक दर्शन की दूरदर्शिता कहती थी कि हम नहीं चाहते कि हमारे रजिस्टरों में, जनगणना सूची में अछूतों का पृथक वर्गीकरण हो। एक नयी छूआछूत की धरा बने इसकी बजाय उनका कहना था कि ऐसा हिन्दू ध्र्म ही मिट जाए जो यह भेद या विभाजन स्थायी मानता है। अम्बेदकर के उपर्युक्त मन्तव्य पर टिप्पणी करते हुए गाँधी ने विनम्रतापूर्वक यह निवेदन किया कि उन्होंने एक बहुत बड़ी बुराई के बीच अपना काम किया है और उन्हें जो कटु अनुभव हुए हैं, उसके कारण उनकी न्याय–बु(क्षणभर के लिए वक्र हो गई है।

यह सामाजिक–राजनीतिक वक्रता हमारे दर्शन का केन्द्रबिन्दु न बने क्योंकि जिस अखण्ड मानवीय स्वरूप के विभाजन के विरू(हमें लड़ना है, उस लड़ाई में एक नया विभाजन खड़ा करना बु(िमानी और नैतिकता है। मनुष्य का यह कर्त्तव्य बनता है कि ऐसे विभाजनों को दूर करने हेतु उचित उपाय का आवष्किार करे न कि एक नया विभाजन उत्पन्न करें।

सामाजिक न्याय की प्रक्रिया में आज कई अवरोध देखे जा सकते हैं। आधुनिक मानव अतिलोभी, अतिकामी, अतिस्वार्थी, अतिसंकीर्ण, अत्यध्कि सुखवादी, भागवादी, अहंकारी, क्रोधी, इर्ष्यालु, द्वेषी, दया, ध्र्म, दान, सेवा, त्याग, परोपकार, प्रेम, सहिष्णुता, श्र(ा, सम्मान आदि भावनाओं से शून्य होता जा रहा है। अतिसुखवादी उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों ने उसे अन्ध बना दिया है। उसका मन असीमित एवं अनन्त कामनाओं का केन्द्र बन गया है। सदियों के ब्राह्मणवादी वर्ण व्यवस्था और सवर्ण सामंती व्यवस्था

में शोषित, पीड़ित, वंचित, दलित, पिछड़ों को सामाजिक न्याय दिलाने की बात करने वाले जेपी आन्दोलन के नेता लालू प्रसाद, रामविलास पासवान और नीतिश कुमार भी आज सामाजिक न्याय से सरोकार रखनेवाले एवं उसकी पफसल काटने वाले नव–सामंतवाद के नायाब नमूना बन चुके हैं। ये सब सामाजिक न्याय की धरा से विमुख हो गये हैं और वास्तव में ऐसा लगता है कि दरअसल ये सामंती मन–मिजाज के लोग ही हैं जिन्हें सामाजिक न्याय से कुछ लेना–देना नहीं है, बस अपने वोट बैंक की चिन्ता है। ऐसी परिस्थितियों में एक बार पिफर जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया और महात्मा गाँधी जैसे लोगों की प्रबल आवश्यकता महसूस की जा सकती है।

आज वैश्विक ग्राम की बात हो रही है। पूरी पृथ्वी एक परिवार बन गया है। ऐसे अवसर पर यह आवश्यक है कि हमारे चरित्रा का ख्याल कर 'बसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से सर्वहित में सामाजिक न्याय की बात सोचा जाए। समाज के सर्वांगीण विकास के लिए आज उपर्युक्त विचारकों के सामाजिक न्याय के अनुशीलन की आवश्यकता है। सामाजिक न्याय, समता, सहअस्तित्व, सामाजिक सामंजस्य एवं सौहार्द वृ(में अप्रतिम अवदान साबित हो सकेंगी। इसके अतिरिक्त सरकारी स्तर पर सामाजिक न्याय की स्थापना की दिशा में किये गये काय्र आंशिक रूप से सपफल माने जा सकते हैं। आरक्षण ने दलित, पिछड़े वर्गों को आर्थिक, सामाजिक रूप से समृ(अवश्य किया है लेकिन यह दुःख और दुर्भाग्य का विषय है कि हरिजन एक्ट आदि हरिजनों पर होनेवाले अत्याचार को रोकने के लिया लाया गया था। कुछ ऐसे भी मामले प्रकाश में आये हैं जहाँ इन हरिजनों ने अपना स्वार्थ साध्ने के लिए उक्त नियम का दुरूपयोग किया है। शासक, अध्किारी द्वारा भी पद प्रभाव का दुरूपयोग किया जाता है जो सामाजिक न्याय की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण अवरोध है। जिसे दूर करने के पश्चात् ही हम 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के सपनों को साकार कर पायेगे जो सामाजिक न्याय का असली निहतार्थ है।

संक्षिप्त सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची :–

1. मंत्राी, गणेश : मार्क्स, गाँधी और समसामयिक सन्दर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0–129.
2. वर्मा, डॉ0 वी0पी0 : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
3. दत्त, प्रो0 डी0एम0 : चीपफ करेन्टस ऑपफ कन्टेम्पोरेरी वेस्टर्न पिफलॉसपफी, पृ0–123–124.
4. नारायण, जयप्रकाश : टूवार्ड्स स्ट्रगल, पद्मा पब्लिकेशन्स, बम्बई, 1946 – ;सम्पादित – यूसुपफ मेहर अलीद्ध
5. लोहिया, राममनोहर : 'एस्पेक्ट्स ऑपफ सोसलिस्ट पॉलिसी, बम्बई टुलय रोड, 1951.
6. बोस, एन0के0 : स्टडीज इन गाँध्जीम, कलकत्ता इंडियन एशोसिएशन पब्लिशिंग कम्पनी, 1947.
7. गाँधी, महात्मा : द नन वॉयलेन्स इन पीस एण्ड वार, अहमदाबाद नवजीवन पब्लिशिंग हाउस।
8. प्रसाद, महादेव : सोशल पिफलॉसपफी ऑपफ महात्मा गाँधी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, 1958.
9. वर्मा, अशोक कुमार : समाज दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास।
10. अवस्थी, डॉ0 अमरेश्वर एवं अवस्थी, डॉ0 रामकुमार : फआधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तनय्, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1991
11. छण ेकसमतए ेण;मकण्द्धए । बवउचंदपवद जव म्तसल डवकमतद चीपसवेवचीलए ठसंबाूमससए 2002ण
12. ैंदकए श्रवीद ;मकण्द्ध ब्मदजतंस ॅवतो वि चीपसवेवचीलए टवसण.3ए जीम छपदमजममदजी ब्मदजनतलए डबळपससए 2005ण